"चित्रलेखा : पाप - चिंतन - अध्ययन से लेकर अनुभव तक की यात्रा"

- रत्नाम्बर - "हाँ पाप की परिभाषा करने की मैंने भी कई बार चेष्टा की है; पर सदा असफल रहा हूँ। पाप क्या है, और उसका निवास कहां है, यह एक बड़ी कठिन समस्या है, जिसको आज तक नहीं सुलझा सका हूं। अविकल परिश्रम करने के बाद, अनुभव के सागर में उतारने के बाद भी जिस समस्या को नहीं हल कर सका हूं; उसे किस प्रकार तुमको समझा दूं ?"

- "... पर श्वेतांक, यदि तुम पाप जानना ही चाहते हो तो तुम्हें संसार में ढूँढ़ना पड़ेगा।"

- "पर एक बात याद रखना। जो बात अध्ययन से नहीं जानी जा सकती है, उसको अनुभव से जानने का प्रयत्न करने के लिए ही मैं तुम दोनों को संसार में भेज रहा हूं। इस अनुभव में तुम स्वयं ही न बह जाओ, इसका ध्यान रखना पड़ेगा। संसार की लहरों की वास्तविक गति में तुम दोनों बहोगे। उस समय ध्यान रखना पड़ेगा कि कहीं डूब न जाओ।"[१]

इस तरह प्रारंभ होती है चित्रलेखा की कहानी, जहां श्वेतांक और विशालदेव अथाह संसार सागर की थाह लेने प्रस्थान करते हैं। श्वेतांक क्षत्रिय है इसलिए भोगी बीजगुप्त के पास और विशालदेव ब्राह्मण है तो योगी कुमारगिरि के पास अपने-अपने अनुभव की फलश्रुति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। गुरु रत्नाम्बर अपनी साधना के शुष्क क्षेत्र में तपस्या के लिए निकल पड़ते हैं। योगी और भोगी दोनों का अपना अपना दर्शन ही नहीं जीवनदर्शन भी होता है। दर्शनशास्त्रों में शास्त्रीय सिद्धांत होते हैं पर जीवन तो अपनी मिसाल खुद है। जीवन का दर्शन या गणित जीवन से ही निपजता है जहां पर सिद्धांत या आंकडों का नहीं पर व्यावहारिक दृष्टि और व्यावहारिक आंकडें अपना ही समीकरण लेकर उपस्थित होते हैं जिसमें कोई भी सिद्धांत जस के तस स्वरूप में लागू नहीं किया जा सकता। जीवन जिंदा है, प्रवाहमान है, बदलता है, क्षण क्षण में बदलती प्रकृति की तरह मनुष्य का जीवन भी साँस लेने में और छोडने में कर्म, विकर्म और अकर्म रूप में परिवर्तित होता ही रहता है। किसी भी दर्शन का कोई भी सिद्धांत खरा सोना होता है, जिससे अलंकार बनाने के लिए उसे रासायनिक प्रक्रिया से गुजरना ही होगा। चाहे तांबा मिलाओ या चांदी पर मिलावट जरूरी है। बिना मिलावट के गहना बन भी गया तो वह टिकाऊ नहीं होगा। जीवन में भी अपनी दृष्टि का दर्शन अपनी-अपनी प्रकृति अनुसार चाहे भोग हो या योग उस व्यवहार का रसायण मिलाना ही होगा। यहां पर अपने अनुभव का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। बहुत बार भोग - योग का दर्शन एक दूसरे से टकरा भी जाता है, विरोधी दर्शन बन जाता है तब हर वस्तु अपनी सापेक्षता में बदलती जाती है। योगी के लिए न दिखनेवाली आत्मा और भोगी के लिए दिखनेवाला शरीर महत्त्वपूर्ण बनता है। सामान्य मनुष्य के लिए शरीर से, साकार से आत्मा तक - निराकार तक पहुंचना आसान होता है तो असामान्य सीधे आत्मा - निराकार तक पहुंचने में सफल हो जाता है। शरीर और आत्मा का दर्शन, भोगी और योगी का दर्शन उऔर उसके व्यवहार में 'पाप' का अनुभव यही श्वेतांक और विशालदेव की अनुभूति है।

'चित्रलेखा' गुप्तकालीन नर्तकी और उस समय के कालखंड पर महावीर, बुद्ध का प्रभाव - ज्यादातर बुद्ध का - था । जहां 'पाप' पर सोचना आवश्यक हो गया ।

भगवतीचरण वर्मा की कृति अपने कालखंड में बदलती चिंतन धारा को व्यक्त करने का प्रयास करती है । प्रेमचंद युगीन साहित्य में आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत किए जाते थे । वहाँ व्यक्ति चित्रण आता भी था तो सामाजिक ईकाई के रूप में ही आता था । इसीलिए प्रेमचंद जी और प्रसाद जी अपने-अपने समय में, अपनी अपनी कृतियों में अपना-अपना विकास, अपने-अपने सामाजिक दायरे में ही करते रहे, पर विकसनशील गतिविधियों में अपना आदर्श खोखला लगते ही अपना बदलता दृष्टिकोण भी चित्रित करते रहे । 'पूस की रात' (१९३४) 'कफन' (१९३६) ले. प्रेमचंद और प्रसाद जी की कृति 'सेवासदन' या 'प्रेमाश्रम' अपने युग में कोई समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाई । इसी क्रम में भगवतीचरण वर्मा जी की कृति 'चित्रलेखा' - १९३४ - को जांचे तो पता लगता है कि विश्व का बदलता चित्र पकडकर उस बदलाव को बदलते संदर्भों में पेश करने का प्रयत्न द्रष्टव्य है । औद्योगिक क्रांति और डार्विन का उत्क्रांति चितन साथ-साथ फ्रायड का मनोवैज्ञानिक चिंतन मनुष्य को मानवीय, मनोवैज्ञानिक संदर्भों में परखने का चिंतन देते हैं । आदर्शवाद को छोडकर जीवन में मानसशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक स्तर की दृष्टि महत्त्वपूर्ण होने लगी थी । प्रत्येक मनुष्य में स्वाभाविक वृत्तियाँ होती हैं । जो प्राकृतिक प्रवृत्तियां हैं उसका अगर दमन ही होता रहा तो वे मनुष्य के अवचेतन में जाकर छिप जाती हैं, जो मानस को दूषित करती हैं, विकृति के रूप में बाहर आती हैं । दमन के बजाय विवेक सभर शमन का मार्ग ज्यादा उचित है । शरीर को समझकर आत्मा तक पहुँचने का मार्ग ज्यादा उचित है । वर्माजी 'चित्रलेखा' में अपने पात्रों के माध्यम से यही मध्यम मार्ग का दर्शन प्रस्तुत करते हैं । साथ-साथ मनुष्य का 'अहम्' तथा उससे जन्मती ग्रंथियाँ इस पर भी सोचने का कार्य करते हैं । हिंदी उपन्यास साहित्य में इसी 'अहम्' को लेकर अज्ञेय, जैनेन्द्र आदि उपन्यासकार अपना चिंतन देते हैं ।

'पाप-पुण्य' विचार करने के धरातल पर यह उपन्यास अपने समय में, पुरानी मान्यताओं को चुनौती देता है । परंपरागत धारणाओं को प्रश्नार्थ चिह्न के रूप में देखने का साहस वर्माजी ने किया है । प्रेम की तरफ देखने का उनका दृष्टिकोण भी नई दिशा धारण करता है । चित्रलेखा जब बीजगुप्त से कहती है कि 'मैं योगी कुमारगिरि की वासना का साधन बन चुकी हूं । मैंने अपने शरीर को क्रोध में आकर उसको सौंप दिया है । मैं अपवित्र हूं ।''

तब बीजगुप्त कहता है –

''केवल इतनी-सी बात थी ? बीजगुप्त हंस पडा - चित्रलेखा तुमने मुझे समझने में भ्रम किया । ... प्रेम प्रांगण में कोई अपराध नहीं होता'' (पृ. १७४-१७५)

यह दृष्टि और चेतना स्त्री-पुरुष के संबंधों को नया आयाम देती है । बीजगुप्त समाज का विरोध सहकर भी नर्तकी चित्रलेखा से संबंध रखता है और उसके स्खलन को मानवीय रूप में स्वीकार भी करता है । त्याग में ही दोनों अपना प्यार पा लेते हैं । यहां बीजगुप्त भोगी तो है पर वासना एवं कामुकता से दूर है । सामंतीय चिंतन में स्त्री-विलास और भोग की सामग्री है पर बीजगुप्त उसे पत्नी का-सा स्थान देता है । यह खोज जो व्यक्ति में की जा रही है कि प्रेम सब के लिए है । यही उस समय की नई दिशा है । भले ही

चित्रलेखवा पत्नी - सी ही बनकर रह जाती है फिर भी भोग्या के स्थान से तो बेहतर ही है । प्रेम का परिवर्तित रूप भी चित्रलेखवा के द्वारा व्यक्त किया गया है । चित्रलेखवा के जीवन में तीन पुरुष आए पति, विधवा होने के बाद कृष्णादित्य उसकी मृत्यु के बाद बीजगुप्त को पाकर वह पूर्णता का अनुभव करती है पर फिर कुमारगिरि की ओर आकर्षित होती है । अपना विश्लेषण करती है । बीजगुप्त से अपना आकर्षण छुपाती है । श्वेतांक को भी कहती है कि तुम बीजगुप्त को बताना नहीं । जिससे प्यार है उससे अपनी कमजोरी छुपाकर चित्रलेखवा पाप ही करती है, श्वेतांक से भी करवाती है । उस तरफ विशालदेव भी चित्रलेखवा और कुमारगिरि का पतन देखता है । योगी शरीर के आकर्षण से मुक्त नहीं हो पाते । इतना ही नहीं बीजगुप्त के बारे में गलत जानकारी भी देते हैं । सच अनुभव के बिना यह पाप और उसकी सूक्ष्मता कहां समझ में आती ? गुरु रत्नाम्बर की महानता कि उन्होंने अपने आपको असमर्थ बताया । प्रकृति की सब चीजें सापेक्षता में ही पहचानी जाती हैं । योगी के लिए जो पाप है वह नर्तकी के लिए नहीं है । पृ १३१ से १३६ तक का संभाषण योगी के 'अहम्' को चित्रित करता है जो नर्तकी पर विजय प्राप्त करना चाहता है । योगी का अहम् उसके लिए पाप है । चित्रलेखवा का अहम् उससे कहलवाता है –

"प्रकाश पर लुब्ध पतंग को अंधकार का प्रणाम है" ।

उसी तरह सुख शांति की परिभाषा सापेक्षता में ही है । प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए जो सही है वही करता है, और उसके हिसाब से दूसरे सिद्धांत पर विश्वास करनेवाला व्यक्ति गलत मार्ग पर है । चित्रलेखवा सुंदरी होने के साथ-साथ विदूषी भी है । स्त्री को जो माया, अंधकार, वासना समझते हैं, उन पर प्रहार करने के लिए ही वर्माजी ने चित्रलेखवा का पात्र चुना है । उसमें ऐतिहासिकता न हो कोई बात नहीं पर बदलते समय में पुराने दर्शन, जीवन, परंपरा, संवेदना, मानवीय संबंध, विज्ञान, मनोविज्ञान, स्त्री-पुरुष संबंध, शैलीगत नवीन प्रयोग, सामाजिक बदलाव और समाज सुधारणा जो उन्नीसवीं सदी में द्रष्टव्य होती ही है उसका निरुपण इस उपन्यास में किया गया है । प्रेमचंद युगीन पात्रों में नर्तकी नारी उसकी मानवीय संवेदना या उसका पुनर्विवाह बहुत बड़ी बात थी । इसके सामने चित्रलेखवा को मानवीय संदर्भों में चित्रित करके अपने समय में वर्माजी उस समय को नए क्रोसरोडस पर पहुँचा देते हैं । समाज से क्रोस होते-होते उनका चिंतन अपने युग में क्रोस सेक्शन प्रश्न उत्पन्न करने में कामयाब हो जाता है । यही उनकी सफलता भी है । चित्रलेखवा का चयन पाप - पुण्य पर मनोवैज्ञानिक रूप से सापेक्षता में देने के लिए ही किया गया है । अतिवादिता का विरोध कुमारगिरि और चित्रलेखवा द्वारा दिखाया गया है और बीजगुप्त द्वारा सहज मध्यम मार्ग का चिंतन दिखाया गया है । अतिवाद या दमन में स्खलन स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है जबकि सहज मध्यम मार्ग में शमन और स्थिरता है और स्खलन नहीं है । मानवीय उदारता भी है जो चित्रलेखवा के स्खलन को स्वीकारती है फिर भी 'अपराध बोध' से दूर है । मानस शास्त्रीय संदर्भ में दमन विकृति में परिवर्तित होता है और विवेक बुद्धि का शमन उर्ध्वगामी बनाता है । मनुष्य का मानवीय संदर्भों में विस्तृतिकरण करने में सहायता करता है । मानवीय सहज प्रवृत्तियों का स्वीकार कर लेने पर उससे बाहर निकलने का मार्ग भी खोजा जा सकता है । जीवन को भोगने के बाद योग के बारे में सोचा जा सकता है जो ज्यादा स्थायी

होता है। बीजगुप्त उसीका उदाहरण है जबकि चित्रलेखा पाप-पुण्य, प्रेम-नफरत, पाना-खोना से गुजरती हुई अपनी नारीय संवेदनाओं को, अंतर्विरोधों के बावजूद विश्लेषित करने में सफलता प्राप्त कर लेती है। बीजगुप्त और चित्रलेखा एक दूसरे को प्यार करते हैं पर उस प्यार को पाने के लिए एक दूसरे पर अपना अधिकार थोपने का प्रयत्न नहीं करते। यह चिंतन ही स्त्री-पुरुष समानता का चिंतन है। जो मानवीय चितन भी बनता है। इस उपन्यास से चित्रलेखा नाम की फिल्म बनी थी उसमें पाप-पुण्य चिंतन योगी, भोगी रूप में हुआ था वह गीत तीन चार मिनटों में ही गहरी छाप छोड जाता है –

संसार से भागे फिरते हो, भगवान को तुम
क्या पाओगे इस लोक को भी अपना न सके, उस लोक
में भी पछताओगे ···

आलोचकों का कहना है कि चित्रलेखा फ्रांसिसी उपन्यास 'ताइस' से सीधे प्रभावित है जिसके लेखक अनातोले हैं। तुलनात्मक अध्ययन में प्रभाव अध्ययन भी महत्त्वपूर्ण रहता है जिसका डीएनए खोजना बहुत मुश्किल है। प्रभाव को एक रॉमटिरियल के रूप में भी इस्तमाल किया जा सकता है।[२] पर इसका उपयोग लेखक किस प्रकार करता है उसे जांचे बिना कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि लेखक अगर परदेसी प्रभाव बड़े पैमाने पर इस्तमाल करेगा तो अपनी संस्कृति से कट जाएगा या अलग पड जाएगा। शायद इसीलिए अपने अपने देशी घटकों के साथ उन्हें उचित रूप में मिलाना आवश्यक हो जाता है। संहिता और आंतरसंहितात्मकता के संभोग से कृति का जन्म होता है, इस प्रकार का चिंतन अंग्रेजी भाषा में बहुत पहले शुरू हो गया है जैसे एक पुस्तक का नाम ही है - 'textual intercourse'– जिसे हम 'संहिता का संभोग' कह सकते हैं। हो सकता है चित्रलेखा की मूल संहिता का संभोग फ्रांस के अनातोले के 'ताइस' उपन्यास से हुआ हो, जिसका स्वीकार वर्माजी ने 'धर्मयुग' २५ अगस्त, १९६३, पृ १८ पर किया है। इसी तरह वीणा अग्रवाल 'चित्रलेखा - सृजतात्मक अनुकृति' के प्राक्कथन में इस ओर इशारा करती हैं कि वर्मा जी को चित्रलेखा लिखने की प्रेरणा अनातोले के उपन्यास से मिली थी। अर्थात 'प्रभाव' या 'प्रेरणा' का स्वीकार तो है ही जिस पर अलग से तुलनात्मक पेपर तैयार किया जा सकता है, इसलिए इस चर्चा को यहीं पर छोडकर हम 'पाप-पुण्य' की समस्या पर आगे बढ़ते हैं। हमें उसीकी बहती गति में 'बहना' है। 'डूबना' नहीं। गुरु रत्नाम्बर के दोनों शिष्य विशालदेव और श्वेतांक दोनों अपने-अपने प्रवाह की गति में बहते हुए पाप की जड़ तक पहुंचने का प्रयत्न करते हैं।

साधारणतः पाप की परिभाषा भी वही है कि जो कृत्य धर्म या समाज के खिलाफ हो वही पाप है। अगर हम अलग-अलग धर्मों के आदेशों को पढ़े तो हमारे धर्म हमें क्या सीखाते हैं उस पर गौर किया जा सकता है। निषेधाज्ञा से भरे हुए धर्मप्रसार को हम धर्म मानते हैं। कभी-कभी तो क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना चाहिए उस पर धर्मादेश दिए गए हैं। किसी एक धर्म में जो त्याज्य है वह दूसरे धर्म में त्याज्य नहीं है। शराब पीना कहीं हराम है तो कहीं नहीं है। कामेच्छा के बारे में भी हमारा दृष्टिकोण नकारात्मक ही है। पांच हजार वर्षों से अगर भारतीय चिंतन हमें धर्माज्ञा दे रहा है तो अब तक भारत भूमि पर स्वर्ग की स्थापना हो जानी चाहिए थी, पर वास्तव में ऐसा हुआ नहीं है। सवाल यह है कि हमें हमारे चिंतन दर्शन ने बेहतर मनुष्य बनाया कि नहीं ? वर्मा जी अपने समय में मनुष्य को

समझने के लिए मनोवैज्ञानिक धरातल पर सोचना चाहते थे । धर्म और दर्शन पर, मानवीय जीवन पर, उसके उस समय के मूल्यों पर, बदलते संदर्भों पर समाज के संक्रांतिकाल को उजागर करना चाहते थे । श्लील - अश्लीलता का प्रश्न उस समय बहुत चर्चा में था । आर्यसमाज, ब्रह्मोसमाज की सुधारणा प्रवृत्ति से भारतीय मानस अपनी राह खोजना चाहता था । धर्म तो चाहिए पर अंधभक्ति नहीं । हमारी समूचित परंपरागत मान्यताओं पर प्रश्न चिहन लग गया था । विश्वयुद्ध हो चुका था तथा ईश्वर, जीवन की मान्यताओं मे आमूलाग्र परिवर्तन हो चुका था । ऐसे में नए सिरे से सोचना आवश्यक हो गया था । खोखले समाज को नए संदर्भों में रखना आवश्यक हो गया था । बाइबल का चिंतन भी पाप का नाश चाहता है और पापी को बेहतर मनुष्य बनने का मौका देना चाहता है ।

अपने वर्तमान में खुशवंत सिंह जीवन का लक्ष्य आनंद और खुशी मानते हैं ।[3] आपके विचार में जीवन में जितना महत्त्व आत्मा का है उसी अनुपात में शरीर भी महत्त्वपूर्ण है । वे चाईनीस पुस्तक 'The Importance of Living' (लेखक लीन युटांग) का संदर्भ देकर जीने का महत्त्व शरीर, आत्मा, आत्मवादी दृष्टि भौतिकवादी दृष्टि, शारीरिक दृष्टि के समन्वय में बताते हैं ।

जैवशास्त्रीय और इंद्रियबोध पर आधारित यह सुख और आनंद जो कि आत्मा का आवरण लेकर बात नहीं करता पर विज्ञान का आधार शरीर के आनंद और सुख की बात करता है । यह बोध यह भी सूचित करता है कि आत्मा तभी खुश हो सकती है जब हमारी अंतःस्त्रावी ग्रंथियाँ endocrine glands - सही रूप में काम कर रहीं हो । जब हमारी पचनक्रिया सही दिशा में काम कर रही हो तब हमारा शरीर खुश होता है । जब शरीर की सब ग्रंथियाँ समन्वयात्मक रूप में कार्य न करें पाचक रस स्त्रवित नहीं होंगे, अंतडियाँ साफ नहीं होंगी । पेट साफ नहीं होगा तो सिरदर्द होगा, सिरदर्द बहुत सारे दर्दों में परिवर्तित होगा ... सुख और आनंद की अनुभूति इंद्रियग्राह्य ही है । जब शरीर स्वच्छ होता है तो मन, मस्तिष्क, आत्मा सबकुछ स्वच्छ, निरोगी बनता है । सुसंगत शरीर ही शांतिमय स्वर समष्टिगत स्वरूप में झंकृत कर सकता है । यही सहज शरीर चिंतन आत्मा की ओर ले जाने में कामयाब हो सकता है । चित्रलेखा का रचनाकार अपने समय में शरीर को विज्ञान और मनोविज्ञान के दायरे में रखकर अपने समय के प्रेमचंदीय या प्रसादीय आदर्शों को तोड़कर समाज की बजाय व्यक्तिगत चिंतन देने का प्रयास करते हैं । हर मनुष्य सुख ही चाहता है पर उसके सुख के केंद्र भिन्न-भिन्न होते हैं । दृष्टिकोण की विषमता ही सुख-दुःख, पाप-पुण्य, अच्छे-बुरे का भेद करती है । कुमारगिरि सिर्फ आत्मा के सुख की ही बात करता है । सौंदर्य की ओर इसका ध्यान गया ही नहीं था । चित्रलेखा में ज्ञान और सौंदर्य दोनों है । दोनों के केंद्र अलग-अलग थे जिसे कुमारगिरि और चित्रलेखा अनुभव करते हैं । उस तरफ बीजगुप्त वासना और प्रेम पर चिंतन करता है । सामंत होते हुए भी स्त्री उसके लिए बपौती या जागीर नहीं है । एक तरफ से वह परंपरा के धागों को तोड़ता है तो दूसरी तरफ से छायावादी दृष्टिकोण से भी ऊपर उठकर आत्मा - शरीर को सहज रूप में देखता है । वास्तव में क्लासिसिझम के विद्रोह में रोमेंटिसिझम की प्रवृत्ति आती है और यह विद्रोह सिर्फ राजकीय ही नहीं पर नीतिपरक, धार्मिक, साहित्यिक परंपरा का भी था । उस समय में वर्डस्वर्थ ने काव्य और विज्ञान के अंतर को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया

था। काव्य और विज्ञान के सापेक्ष महत्त्व में उन दोनों को एक दूसरे का पूरक पड़ा जहां परंपरा के साहित्य शास्त्र का विरोध करके यथार्थजीवन, सामान्य जीवन को महत्त्व दिया जाने लगा। समाज से बहिष्कृत जनों पर विचार होने लगा। स्त्री-पुरुष से शरीर संबंधों में विवाह की आवश्यकता पर प्रश्नार्थ चिहन लग चुका था। विवाहेत्तर संबंध तथा परकीया नारी संबंध पाप है कि पुण्य ? चित्रलेखा नारी होकर अपने प्यार (या वासना) का इज़हार करती है यह बात उस समय के लिए नई ही मानी जाएगी।

इस प्रकार चित्रलेखा परंपरागत नैतिकता नारी की स्थिति, धर्म, मनोविज्ञान आदि संदर्भों में अपना मार्ग तय करती है। गुरु रत्नाम्बर के शिष्य श्वेतांक, विशालदेव, अपने भोग, योग चिंतन पर पाप को समझ पाते हैं। बीजगुप्त और चित्रलेखा अपने शारीरिक प्यार से ऊपर उठते हुए, वस्तुओं का त्याग करके सिर्फ प्रेम को ही अपना आधार बनाकर, प्रेम की नौका और रात का अथाह प्रवाह ओढ़कर अपनी दुनिया में अपना अर्थ पाने निकल पडते हैं ....।

सहायक ग्रंथ

१) चित्रलेखा - डॉ. भगवतीचरण वर्मा, उपक्रमणिका पृ. ५, ६, ७

२) 'नीहार' - दीवाली - डॉ. आनंद पाटिल - "वाड.मयचौर्य साहित्य संभोगातून संहितेकडे..."

३) नवहिंद टाइम्स - ले. खुशवंत सिंह - "The way of Chinese" ऑक्टो. २६, २००३.

- **डॉ. चंद्रलेखा,**
वरिष्ठ व्याख्याता,
कोंकणी विभाग,
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा।
४०३ २००

- ***हिन्दी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।***

  - स्वामी दयानंद

- ***हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में प्रांतीय भाषाओं को हानि नहीं वरन् लाभ है।***

  - अनंत शयनम आयंगर

- ***हिन्दी से किसी भारतीय भाषा को भय नहीं है। यह सबकी सहोदर है।***

  - महादेवी वमा

- ***हिन्दी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्त्रोत है।***

  - सुमित्रानन्दन पंत

- ***हिन्दी हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक व्यवहार में आने वाली भाषा है।***

  - चिन्तामणि विनायक वैद्य.